P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-8* ISSUE-4* December- 2020
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

इतिहास लेखन में ब्रिटिश उपनिवेशवाद : एक विश्लेषण

British Colonialism in History Writing: An Analysis

Paper Submission: 15/12/2020, Date of Acceptance: 28/12/2020, Date of Publication: 29/12/2020

अजीत सिंह चौधरी
सहायक आचार्य,
इतिहास विभाग,
श्री कल्याण राज. कन्या महाविद्यालय,
सीकर, राजस्थान, भारत

वीरेन्द्र सिंह चौधरी
सहायक आचार्य,
इतिहास विभाग,
स्व. पं. नवलकिशोर शर्मा राज. स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
दौसा, राजस्थान, भारत

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विभिन्न दृष्टिकोणों (उपागमों) की सहायता से अध्ययन किया गया है। भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद लगभग दो सौ वर्षों तक रहा और इसका भारतीय जीवन एवं समाज पर व्यापक प्रभाव पडा। इसने सोये हुए एवं मृतप्राय भारतीय समाज को गहराई तक हिला कर रख दिया। यहॉ के आत्मनिर्भर ग्राम्य समूहों को बाहरी दुनियां के सम्पर्क में लाकर इसने भारतीय अर्थव्यवस्था को एकदम बदल डाला और इसके राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में कई नवीन आयाम जोडे। इस क्रांतिकारी घटना का ब्रिटिश तथा यूरोपीय उदारवादियों से लेकर कार्ल मार्क्स तक ने उल्लेख किया था। भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के अध्ययन के मुख्यतः चार दृष्टिकोण है– 1. साम्राज्यवादी दृष्टिकोण 2. मार्क्सवादी दृष्टिकोण 3. राष्ट्रवादी दृष्टिकोण 4. उपाश्रयवादी या निम्नवर्गीय दृष्टिकोण। अलग–अलग इतिहासकारों के लेखन के तुलनात्मक अध्ययन का सम्बंध इतिहास लेखन से है। जहाँ इतिहास अतीत के अध्ययन से सम्बंधित है, वहॉ इतिहास लेखन अतीत की व्याख्या से सम्बंधित है। भारत की औपनिवेशिक स्थिति का इसके अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोणों पर भी पडा। प्रस्तुत शोध पत्र शासित जनता की सोच, उसके सांस्कृतिक संकटों और सामाजिक परिवर्तनों को, उनके विद्रोह, उनकी एक पहचान की तलाश को तथा अनेक प्रकार की उपनिवेशी नीतियों के माध्यम से उन तक पहुँचाने वाली आधुनिकता का इतिहास–लेखन के विभिन्न दृष्टिकोणों (उपागमों) की सहायता से विश्लेषण करता है। यह उपनिवेशी शासन के शासन के जन्म और क्रियाकलाप के बारें में तथा भारत में एक बहुलवादी और बहुभाषी राष्ट्रवाद के जन्म के बारें में भी विभिन्न निष्कर्षो और बहसों का उल्लेख करता है और उनकी आलोचनात्मक विवेचना करता है।

The presented research paper has been studied with the help of various approaches (approaches) to British colonialism in India. British colonialism in India lasted for nearly two hundred years and had a wide impact on Indian life and society. It shook the sleeping and dying Indian society deeply. By bringing the self-reliant rural groups here in contact with the outside world, it completely changed the Indian economy and added many new dimensions to its political, social and cultural life. This revolutionary event was mentioned by British and European liberals to Karl Marx. The study of British colonialism in India has mainly four perspectives - 1. Imperialist view 2. Marxist view 3. Nationalist approach 4. Subaltern or lower class approach. Comparative study of the writings of individual historians is related to historiography. Where history relates to the study of the past, historiography deals with the interpretation of the past. The study of India's colonial situation was also explored in various perspectives. The paper presented presents the thinking of the governed people, its cultural crises and social changes, their rebellion, their quest for an identity and the various approaches to the historiography of modernity reaching them through a variety of colonial policies. Analyzes with assistance. It mentions and critically discusses various conclusions and debates about the birth and activity of colonial rule and the birth of a pluralistic and multilingual nationalism in India.

मुख्य शब्द : उपनिवेशवाद, मार्क्सवाद, उपाश्रयवादी, भू राजस्व।
Colonialism, Marxism, Apartheid, Land Revenue.

प्रस्तावना

किसी समृद्ध एवं शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा अपने विभिन्न हितों को साधने के लिए किसी निर्बल किंतु प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण राष्ट्र के विभिन्न

संसाधनों का शक्ति के बल पर उपभोग करना, ही उपनिवेशवाद होता है। उपनिवेशवाद में उपनिवेश की जनता एक विदेशी राष्ट्र द्वारा शासित होती है, उसे शासन में कोई राजनीतिक अधिकार नहीं होता। आर्गन्सकी के अनुसार, ''वे सभी क्षेत्र उपनिवेशों के तहत आते हैं जो विदेशी सत्ता द्वारा शासित हैं एवं जिनके निवासियों को पूरे राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं है।'' संक्षेप में हम किसी शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा निहित स्वार्थवश किसी निर्बल राष्ट्र के शोषण को उपनिवेशवाद कह सकते है। औद्योगिक क्रांति के दौरान कुछ यूरोपीय देशों में जब पूँजीवाद परिपक्वता की ओर अग्रसर हुआ तो औपनिवेशिक विस्तार की नीति सीधे पूँजीवादी विकास की आवश्यकताओं से जुड़ गई।

औपनिवेशिक शक्तियों ने कम्पनी–प्रशासन द्वारा या फिर सीधे शासन के हस्तक्षेप द्वारा स्थानीय उद्योगों पर अंकुश लगाने की कोशिश की ताकि स्थानीय व्यापारियों को विदेशी माल खरीदने के लिये बाध्य किया जा सके। उपनिवेशवाद एक ऐसा ढाँचा होता है जिसके माध्यम से किसी देश का आर्थिक शोषण तथा उत्पीड़न संपन्न होता है। उपनिवेशवाद का मूल तत्व आर्थिक शोषण में निहित है। उपनिवेशवाद की प्रकृति मुख्यतः इनके आर्थिक शोषण के विभिन्न तरीकों से जानी जाती है। उपनिवेशवाद का अध्ययन ''अंतर्विरोधों की श्रृंखला'' के रूप में भी किया जा सकता है। ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने भारत में कई तरह के अंतर्विरोधों को जन्म दिया जिन्हें विकास और पिछड़ेपन के अंतर्विरोध कहा जा सकता है।[1] ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उपनिवेशवाद एक ऐसी प्रक्रिया थी जो यूरोप के उन महानगरों द्वारा आरम्भ की गई जहाँ औद्योगिक क्रांति पहले हुई।

भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद यहाँ के आर्थिक अधिशेष को हड़पने के विभिन्न तरीकों पर आधारित है। दादा भाई नौरोजी ने अपनी पुस्तक ''पावर्टी एंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया'' में धन के निष्कासन का सिद्धान्त प्रतिपादित करके इसका विशद् विवेचन किया है। कालान्तर में आर्थिक शोषण को स्थायी और मजबूत बनाने के लिए उपनिवेश पर शैक्षिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पकड़ मजबूत बनाई जाती है और उपनिवेशीकरण की यह प्रक्रिया पूर्ण होती, परन्तु इसका अंतिम परिणाम उपनिवेश के हृदयहीन आर्थिक शोषण के रूप में सामने आता है। भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद मुख्यतः तीन चरणों में गुजरा। संक्षेप में इन तीन चरणों को वाणिज्यिक (Commercial) औद्योगिक (Industrial) तथा वित्तीय पूँजीवाद (Finance-Capitalizm) का नाम दिया जाता है।

अध्ययन का उद्देश्य

ब्रिटिश उपनिवेशवाद के अध्ययन के लिए अनेक पुस्तकें और शोध पत्र उपलब्ध है, परंतु दुर्भाग्य से प्रत्येक इतिहासकार ने भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की अध्ययन करते समय अपनी स्वयं की विचारधारा का प्रभाव इतिहास लेखन पर डाला है । शायद यही कारण है कि आज तक हम भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की लेखन कार्य सही तरह से नहीं कर पाये हैं । मेरे इस शोध पत्र का उद्देश्य ब्रिटिश उपनिवेशवाद का अध्ययन इतिहास लेखन की सभी विचारधाराओं के अंतर्गत कर उनका तुलनात्मक विश्लेषण करते हुए ब्रिटिश उपनिवेशवाद के भारत पर पड़े प्रभाव की मूल्यांकन करना है ।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद के अध्ययन की आवश्यकता :

भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की स्थापना सन् 1757 की प्लासी की लड़ाई में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला की पराजय के साथ ही विधिवत रूप से मानी जाती है, जब इग्लैंड की ईस्ट इण्डिया कंपनी ने बंगाल पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था। इस प्रकार भारत लगभग 200 वर्षों तक ब्रिटिश शासन की अधीनता में रहा। ब्रिटिश उपनिवेशवाद का भारत के समाज, संस्कृति, राजनीति और अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ा। वर्तमान भारत की अनेक समस्याओं का मूल इसके उपनिवेशवादी अतीत में ही तलाश किया जा सकता है। फलतः उन्हें समझने और उनका उचित समाधान करने के लिए ब्रिटिश उपनिवेशवाद का अध्ययन आवश्यक है। भारत की राजनीतिक प्रक्रिया और संरचनाओं पर भी ब्रिटिश उपनिवेशवाद का गहरा प्रभाव रहा है। भारतीय समाज में व्याप्त साम्प्रदायिकता की समस्या का मूल भी इसके औपनिवेशिक अतीत में ही निहित है।

उपनिवेशवाद का अध्ययन तीन कारणों से महत्वपूर्ण है। पहला कारण तो यह है कि आगे आने वाले एक लंबे समय तक हम उन समस्याओं से जुझते रहेंगे जो हमारे समाज में ब्रिटिश उपनिवेशवादी हस्तक्षेप के कारण पैदा हुई थी। दूसरे नव–उपनिवेशवाद के विभिन्न रूपों की गतिविधियाँ अब भी जारी हैं जिन्हें ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में ही ज्यादा अच्छी तरह से समझा जा सकता है। तीसरे, भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरूद्ध संघर्ष करने की प्रक्रिया के दौरान ही राष्ट्रवाद का विकास हुआ और इसी दौरान राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं ने एक ऐसे स्वाधीन भारतीय समाज का स्वप्न देखा था जो समानता, भ्रातृत्व और न्याय के मूल्यों पर आधारित हो। अतः भारत में राष्ट्रवाद को समझने के लिए उपनिवेशवादी दाँवपेच को समझना अत्यन्त आवश्यक है।[2]

संक्षेप में हम कहे तो औपनिवेशिक काल में एक ऐसे भारत के निर्माण का स्वप्न संजोया गया था जिसमें गांधीजी के शब्दों में कमजोर से कमजोर व्यक्ति भी यह महसूस कर सके कि यह उसका देश है और इसके निर्माण में उसका भी हाथ है।[3] ऐसे बहुआयामी प्रभाव वाले राष्ट्रीय आंदोलन के सही स्वरूप और विरासत को समझने के लिए भी भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद का अध्ययन करना आवश्यक है। अतः इन सभी कारणों से भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद का अध्ययन आज भी प्रासंगिक बन जाता है।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद की प्रकृति तथा महत्व

ब्रिटिश उपनिवेशवाद की प्रकृति और इसके नाकारात्मक और साकारात्मक पक्षों को उभारने का कार्य सर्वप्रथम कार्ल मार्क्स ने किया। मार्क्स ने 1853 में भारत पर उस समय एक लेख–माला लिखी जब ईस्ट इंडिया कंपनी का चार्टर अंतिम बार ब्रिटिश संसद के सामने पुनः अनुमोदन के लिए आया।[4] सर्वप्रथम उन्होंने भारत पर पूर्व आक्रमणकारियों और ब्रिटिश द्वारा भारत की विजय में अंतर स्पष्ट किया। मार्क्स के अनुसार अरब, तुर्क, तातार, मुगल जिन्होंने भारत पर विजय प्राप्त कर शासन किया,

शीघ्र ही भारतीय संस्कृति का हिस्सा बन गए परन्तु ब्रिटिश शासन हमेशा विदेशी बना रहा, जिसका प्रमुख उद्देश्य भारत की कीमत पर अपने मातृदेश का विकास करना था। यह एक एक ऐसे आधुनिक देश का शासन था जो अपने यहाँ सामंतवादी व्यवस्था समाप्त कर चुका था तथा भारत में प्रगतिशील व्यापारिक तथा औद्योगिक पूंजीवादी समाज तथा संस्कृति का प्रतिनिधित्व कर रहा था। पूँजीवादी राष्ट्र सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से सामंतवादी समाज की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होता है, क्योंकि यह अपेक्षाकृत उन्नत और परिष्कृत उत्पादन–तकनीक पर आधारित होता है।[5]

पूर्व विदेशी विजेताओं ने भारत के आर्थिक आधार में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं किया था और वे सभी धीरे–धीरे इसी ढाँचे में रच–बस गए। परन्तु ब्रिटिश शासन ने अर्थव्यवस्था के पुराने आधारों का लगभग पूर्ण विनाश कर दिया और वह इग्लैंड से नियंत्रित करने वाला एक विदेशी शासक बना रहा। इग्लैंड में औद्योगिक क्रांति पूर्ण हो जाने पर औद्योगिक हित प्रमुख हो गये। 1813 के बाद इग्लैंड के औद्योगिक उत्पादन के सैलाब ने भारतीय उद्योगों को बर्बाद कर दिया। भारत की ग्रामीण व्यवस्था कृषि और लघु उद्योग के सामंजस्य पर आधारित थी। करघा और चर्खा पुराने भारतीय समाज की धुरी थे जिसे ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने नष्ट कर दिया। उपनिवेशवाद ने भारत के न केवल पुराने औद्योगिक नगरों को नष्ट कर डाला और उन नगरों में रहने वाले लोगों को गांवों में खदेड़ दिया बल्कि गांवों के आर्थिक संतुलन को भी बिगाड़ दिया। यहीं से हमारे देश की खेती पर भीषण दबाव शुरू हुआ।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद का उद्देश्य दोहरा था– ध्वंसात्मक और पुनर्निर्माण अर्थात् प्राचीन भारतीय समाज को नष्ट करना और पश्चिमी समाज के भौतिकवादी आधारों की नींव डालना।[6] भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के कुछ परोक्ष लाभ भी हुए, जैसे विचारों का सामान्य विकास, व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भावना, समाज में ऐसे शिक्षित वर्ग का उदय जिसे विचारों की स्वतंत्रता प्राकृतिक और अनिवार्य लगती थी, राष्ट्रीय भावना का उदय आदि।[7] रेलवे निर्माण तथा अन्य सार्वजनिक कार्यों के महत्व से इनकार नहीं किया जा सकता। उपनिवेशवादी नीतियों के कारण पैदा हुई आर्थिक क्रांति ने भारत के मध्ययुगीन अलगाव को तोडने और इसके आर्थिक जीवन को आधुनिक युग के नजदीक लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारत के ग्रामीण अर्थतंत्र पर आधारित आर्थिक अलगाव की समाप्ति और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था द्वारा आर्थिक इकाई के रूप में भारत का रूपांतर ब्रिटिश उपनिवेशवाद का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रगतिशील परिणाम था परन्तु यह रूपांतर ब्रिटिश व्यापार, उद्योग तथा बैंकिंग की आवश्यकताओं द्वारा प्रेरित था इसलिए यह भारतीय समाज के स्वतंत्र और अविच्छिन विकास में बाधक रहा। ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने भारत की सामंतवादी अर्थव्यवस्था को पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में बदला, हालाँकि यह परिवर्तन अधूरा और विकृत ही था। पुराने भूमि संबंधों तथा हस्तशिल्प उद्योग के ह्रास तथा उसकी जगह नए भूमि संबंधों और आधुनिक उद्योग के उदय ने भी इसमें काफी हद तक सहायता की। पुराने उद्योगों और भूमि–व्यवस्था पर आधारित पुराने वर्गों के विनाश तथा नए भूमि–संबंधों और नए उद्योगों पर आधारित ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में नये वर्गों का उदय ब्रिटिश उपनिवेशवाद के दौरान हुआ। अतः हम देखते है कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद का प्रभाव केवल अर्थव्यवस्था पर ही नहीं पड़ा वरन् भारत के सम्पूर्ण ढाँचे पर पड़ा।[8]

ब्रिटिश उपनिवेशवाद के अध्ययन के दृष्टिकोण

भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद का अध्ययन विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में रखरकर विवेचित व विश्लेषित किया गया है। इन सभी परिप्रेक्ष्यों ने अलग–अलग तरीकों से भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के स्वरूप, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का स्वरूप, अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत एक राष्ट्र था या नहीं आदि जैसे प्रश्नों का विश्लेषण किया है। इन सभी विचारों को निम्न दृष्टिकोण के रूप में समझा जा सकता है–

साम्राज्यवादी दृष्टिकोण

साम्राज्यवादी दृष्टिकोण भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद का विवेचन साम्राज्यवादी नजरिये से करता है। यह दृष्टिकोण सबसे पहले लॉर्ड डफरिन, कर्जन और मिंटो जैसे वाइसरायों और भारत सचिव जॉर्ज हमिल्टन की राजकीय घोषणाओं के रूप में हमारे सामने आता है। वी. चिरोल, रौलेट (राजद्रोह) समिति की रिपोर्ट, वर्नी लोवेट और मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड ने इसको अधिक तर्कसंगत बनाकर पेश किया है। पहली बार 1940 में एक अमेरीकी विद्वान ब्रुस टी. मैकली ने इसको सैद्धान्तिक जामा पहचानाया। इस सिद्धान्त के उदारवादी पक्ष को रेजिनॉल्ड कोपलैंड ने और 1947 के बाद के इतिहास लेखन में पर्सिवल स्पियर ने अपनाया था और 1968 के लेखन में इसमें अंतनिहित रूढिवादी स्वरूप को नया रूप देकर आगे बढ़ाने का काम रूविल सील, जे.ए. गैलाधर और उनके अनुयायियों ने किया।

रूढ़िवादी औपनिवेशिक प्रशासक और कैम्ब्रिज सम्प्रदाय के नाम से विख्यात इतिहासकारों का साम्राज्यवादी खेमा भारत में आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना के रूप में उपनिवेशवाद के अस्तित्व को नकारता है। उनके लिए उपनिवेशवाद मुख्यतः विदेशी शासन से अधिक कुछ नहीं है। वे इसका पुरजोर खंडन करते हैं कि भारत के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विकास के लिए उपनिवेशवादी शासन को उखाड़ फैंकना जरूरी था। इस प्रकार वे साम्राज्यवाद के आर्थिक रूप से शोषणमूलक चरित्र, सामाजिक तौर पर प्रजातीय असमानता पर आधारित श्रेष्ठतावाद और सांस्कृतिक दृष्टि से प्रभुत्वपूर्ण रवैये से इनकार करते है। उनके द्वारा किया गया राष्ट्रीय आंदोलन का विश्लेषण भारतीय जनता और उपनिवेशवाद के आपसी हितों के आधारभूत अंतर्विरोधों के अस्वीकार पर आधारित है। वे भारत के राष्ट्रीय आंदोलन को ब्रिटिश हितों और भारतीय हितों के अंतर्विरोधों का परिणाम न मानकर केवल जाति, धर्म, और अन्य हितों पर आधारित विभिन्न कुलीनों की आपसी प्रतिद्वंदिता के रूप में देखते हैं। इस प्रकार उन्होंने साम्राज्यवाद के विरूद्ध

भारत के राष्ट्रीय संघर्ष को केवल एक नकली लड़ाई माना है जिसके मूल में मुख्यतः कुलीनों की आपसी प्रतिद्वंद्विता शामिल थी।

साम्राज्यवादी इतिहासकार नहीं मानते हैं कि भारत राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में था। उनका मानना है कि जिसे भारत कहा जाता है वास्तव में वह धर्मों, जातियों, समुदायों और अलग–अलग हितों का समुच्चय भर था। इस तरह भारतीय राज्य व्यवस्थाओं के वर्गीकरण को ये इतिहासकार ''भारतीय राष्ट्र'' अथवा ''भारतीय जाति'' या सामाजिक वर्गों की अवधारणाओं के रूप में स्वीकार नही करते। उनका मानना है कि जाति और धर्म के आधार पर बने सदियों से चले आ रहे समूह राजनीतिक संगठन के मुख्य आधार थे। इसलिए जाति और धर्म पर आधारित राजनीति संगठन के मुख्य आधार थे। इसलिए जाति और धर्म पर आधारित राजनीति ही यहां पर मुख्य है, राष्ट्रवाद तो इसका ऊपरी आवरण मात्र है। साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने इस बात पर जोर दिया कि भारत का राष्ट्रीय आंदोलन जन–आंदोलन नही था बल्कि यह अभिजन समूहों की जरूरतों और हितों की उपज था। यहां पर राष्ट्रवाद को मूलतः एक ऐसी विचारधारा माना गया है, जिसका इस्तेमाल वे अभिजन समूह अपनी संकीर्ण महत्वाकांक्षाओं को न्यायोचित ठहराने और जनसमर्थन जुटाने के लिए करते थे। राष्ट्रीय आंदोलन तो सिर्फ एक उपकरण था जिसका उपयोग अभिजन समूह जनता को लामबंद करने और अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए किया करता था। अनिल सील और गैलहर ने भारत के राष्ट्रीय आंदोलन को ''संरक्षक–संरक्षित'' संबंध के रूप में चित्रित किया है। अपनी बात को सैद्धांतिक जामा पहनाते हुए वे कहते है कि जैसे ही ब्रिटिश शासन ने प्रशासनिक, राजनीतिक सत्ता का विस्तार निचले स्तर तक किया, विभिन्न स्थानीय नेताओं ने अपने निहित स्वार्थों को पूरा करने के लिए समर्थक वर्ग प्राप्त करने शुरू किए जिनके हितों को वे पूरा कर सकते थे और बदले में जो उन्हें समर्थन दे सकते थे। इस प्रकार स्थानीय नेता अपने से बड़े नेता का समर्थन करके बदले में उनसे लाभ प्राप्त करने लगे और भारतीय राजनीति का संचालन संरक्षण–संरक्षित ढांचे पर होने लगा। इस प्रक्रिया में बड़े नेता शक्ति के दलाल के रूप में उभर कर सामने आए जो स्थानीय नेताओं की माँगों में समन्वय स्थापित कर सकते थे, उन्हें अंग्रेजों तक पहुँचा सकते थे और उनकी माँगे न माने जाने पर स्थानीय नेताओं और उनके समर्थकों की सहायता से अंग्रेजों से संघर्ष की रणनीति अपना सकते थे। अनिल सील का कहना है कि गांधी, नेहरू और पटेल मुख्य दलाल थे। अनिल सील के शब्दों में – "दूर से देखने पर जो राजनीतिक गतिविधि प्रतीत होती है वह वास्तव में अपने प्रथावादी समूह (prescriptive group) के हितों को उन्नत बनाने का उनका प्रयास था।"[9] इस प्रकार हम देखते है कि साम्राज्यवादी दृष्टिकोण के इतिहासकारों का यह सम्प्रदाय भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को सत्ता के लिए संघर्ष का बहाना मानता है। यह संघर्ष भारतीय अभिजन के विभिन्न गुटों के बीच है तथा इसके साथ ही यह संघर्ष उनके तथा विदेशी अभिजात वर्ग के बीच भी है। यह दृष्टि न सिर्फ उपनिवेशवादी शोषण, अल्पविकास और केन्द्रीय अंतर्विरोध को नकारती है, बल्कि उन लोगों के आदर्श तथा त्याग को भी अस्वीकारती है जिन लोगों ने उपनिवेशवाद विरोधी संग्राम में अपने प्राणों की आहुति दी।

कैम्ब्रिज इतिहासकारों के अनुसार भारत में राष्ट्रवाद का निर्माण ऊपर से नीचे की प्रकिया के तहत हुआ है। यह प्रशासनिक दबावों, संवैधानिक विकास और अवसरों में वृद्धि का परिणाम था। इस व्यवस्था के साथ–साथ कई बार विश्वसनीय नजर आने वाले तर्क का ताना–बाना बुना जाता था। इसके अनुसार तात्कालिक आर्थिक तनावों के तेज होने के कारण ही व्यापक स्तर पर जनता का आंदोलन फूट पड़ा। परन्तु इस प्रकार के संकीर्ण अर्थवाद की यह बुनियादी अवधारणा ही काफी दोषपूर्ण है कि जनांदोलनों के उदय के लिए बढ़ती हुई गरीबी और तंगी ही पर्याप्त कारण है। इस अवधारणा में गाँधीवादी या गैर–गाँधीवादी जनांदोलनों की पृष्ठभूमि के तौर पर सामाजिक–आर्थिक स्थितियों के बारे के सारे गंभीर सवालों को भुला दिया था।[10]

विश्लेषण की यह पद्धति मजदूरों, किसानों, निम्न–मध्य वर्ग तथा महिलाओं की किसी भी तरह की जागरूक अथवा सक्रिय साम्राज्यवाद विरोधी भूमिका को अस्वीकारती है। इस विश्लेषण में उन्हें बच्चों जैसा माना गया है जिनके पास अपनी जरूरत और अपने हित की कोई परिकल्पना न रही हो। परन्तु आश्चर्य इस बात का है कि यदि ऐसा ही था तो उपनिवेशवादी शासक इस अबोध भारतीय जनता को अपनी राजनीति के पीछे लामबंद करने में क्यों नही सफल हुए? ब्रिटिश राज के स्वरूप चित्रण करते हुए भी यह धारा पूर्वाग्रह से ग्रसित ही प्रतीत होती है। एस. गोपाल ने उनकी आलोचना करते हुए लिखा है कि "नेमियर पर यह आरोप लगाया गया था कि उसने राजनीति से मस्तिष्क को बाहर निकाल दिया। लेकिन कैम्ब्रिज सम्प्रदाय उससे भी आगे निकल गया और न केवल मस्तिष्क बल्कि राष्ट्रीय आंदोलन से शालीनता, चरित्र, सदाचार और स्वार्थहीन प्रतिबद्धता सभी को बाहर निकाल दिया।[11] इस प्रकार हम देखते है कि इस दृष्टिकोण का विश्लेषण पूर्णतया एकपक्षीय और पूर्वाग्रह से ग्रसित प्रतीत होता है।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण

मार्क्सवादी दृष्टिकोण मार्क्स के मूलभूत सिद्धांतों के आधार पर ब्रिटिश उपनिवेशवाद का विश्लेषण करता है। यह आर्थिक निर्धारणवाद और वर्ग संघर्ष जैसे सिद्धान्तों का प्रयोग भारत में ब्रिटिश शासन की भूमिका की व्याख्या करने के लिए करता है। मार्क्सवादी सम्प्रदाय ने राष्ट्रवादी आंदोलन के वर्गीय चरित्र का विश्लेषण करने और उसकी व्याख्या उपनिवेश काल के आर्थिक विकासक्रमों के आधार पर करने की कोशिश की, मुख्यतः भारत में औद्योगिक पूंजीवाद के उदय और एक बाजारमुखी समाज के विकास के आधार पर। उसने पूंजीवादी नेतृत्व की पहचान की, जिसने अपने वर्गीय हितों के अनुसार इस आंदोलन को संचालित किया और जनता के हितों को अनदेखा किया, बल्कि एक सीमा तक उसे धोखा भी दिया। रजनी पाम दत्त और सोवियत इतिहासकार वी.आई. पाल्लीव जैसे आरंभिक मार्क्सवादियों

के इस संकीर्ण वर्गीय दृष्टिकोण और आर्थिक निर्धारणवाद को एस.एन. मुखर्जी, सुमित सरकार और विपनचंद्र की परवर्ती मार्क्सवादी रचनाओं में संशोधित किया गया।[12]

मार्क्सवादी दृष्टिकोण उपनिवेशवाद को केवल विदेशी शासन मानने की बजाए इसे एक अधिक जटिल सामाजिक–आर्थिक संरचना मानता है। मार्क्सवादी इतिहासकार मानते है कि उपनिवेशवाद के केन्द्र में आर्थिक शोषण का भाव निहित होता है और उपनिवेशवादी राज्य तो इस आर्थिक शोषण को सुगम और प्रभावी बनाने का साधन मात्र है। यह दृष्टिकोण ब्रिटिश शासन को मूलतः शोषणकारी मानते हुए भी इस शोषण की प्रक्रिया से भारत के लिए उत्पन्न होने वाले लाभों का वर्णन करता है। वे कहते हैं कि अनजाने में ही सही, लेकिन ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने भारत को सामंतवाद से पूंजीवाद में संक्रमण में सहायता देकर ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। यद्यपि यह रूपान्तरण अपूर्ण और विकृत था।[13] इस प्रकार यह दृष्टिकोण भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद द्वारा निभाई गई दोहरी भूमिका पर बल देता है–विध्वंशात्मक और सृजनात्मक। विध्वंशात्मक भूमिका के तहत इसने परंपरागत भारतीय उद्योगों और हस्तशिल्प को नष्ट कर दिया और बड़े–बड़े शहरों के पतन में योगदान दिया। ब्रिटिश उपनिवेशवाद के तीनों चरणों–वाणिज्यिक पूंजीवाद, औद्योगिक पूंजीवाद और वित्तीय पूंजीवाद के युग में भारत का शेषण हुआ। लेकिन इसी विध्वंशात्मक भूमिका ने कुछ सकारात्मक प्रभाव भी पैदा किए। अपने साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति के लिए अंग्रेजों ने भारत का राजनीतिक एकीकरण किया, एक सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था की नींव डाली और आधारभूत संरचनाओं का विकास किया। इन दो विरोधी भूमिकाओं के कारण भारतीय हितों और ब्रिटिश हितों में संघर्ष और तनाव उत्पन्न हुए। यह प्राथमिक अंतर्विरोध ही भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के उदय का कारण बना।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के स्वरूप को वर्ग–विश्लेषण से जोड़कर देखता है। उनके अनुसार भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में यद्यपि सभी वर्गों की भागीदारी थी लेकिन इसका नेतृत्व बुर्जुआ वर्ग के हाथों में था। इस प्रकार गांधी सहित कांग्रेस के समस्त नेतृत्व को उन्होंने बुर्जुआ नेतृत्व की संज्ञा दी। बुर्जुआ नेतृत्व के द्वारा संचालित होने के कारण कांग्रेस की भूमिका भी सुधारवादी बनकर रह गई। सुमित सरकार का कहना है कि भारत में भी उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के दो स्तर थे, एक कुलीनों का और दूसरा जनता का। दोनों में से किसी को भी अनदेखा करने की जरूरत नहीं है, बल्कि इन देनों स्तरों के जटिल घात–प्रतिघात को देखा जाना चाहिए, जिसके माध्यम से ''परिवर्तन के द्वारा निरंतरता का जटिल पैटर्न'' पैदा हुआ जो उस काल का प्रमुख विषय था।[14] इस प्रकार हम देखते है कि आधुनिक भारत के प्रारंभिक मार्क्सवादी दृष्टिकोण में काफी समय तक रूढ़िवादी नजरिया हावी रहा। इस प्रवृत्ति में न केवल आर्थिक नियतिवाद के संकुचित नजरिए का प्रयोग होता रहा बल्कि राष्ट्रवाद की मुख्य धारा के प्रति भी कटु रवैया अपनाया गया।

राष्ट्रवादी दृष्टिकोण

भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास दृष्टिकोण, जो आंशिक रूप से भारत पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी इतिहास लेखन के प्रपंचों और पूर्वाग्रहों के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में अस्तित्व में आया, मूल रूप से पूर्व–औपनिवेशिक काल में राष्ट्रीय अस्मिता से जुड़ा हुआ था। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने साम्राज्यवादी इतिहासकारों मुख्यतः जेम्स मिल एवं विसेंट स्मिथ द्वारा प्रतिपादित विचारों का ब्रिटिश राजतंत्र प्रणाली की श्रेष्ठता, कुषाण एवं गुप्तों के बीच भारतीय इतिहास का अन्धकार युग था– आदि का प्रतिकार किया। राष्ट्रवादी दृष्टिकोण ने भारतीय इतिहास को गौरवान्वित करने का प्रयास किया। भारतीय संस्कृति की अद्वितीयता और प्राचीनता एवं स्वतंत्र अस्तित्व पर विस्तार से लिखकर भारत को गर्व का अनुभव कराया। ब्रिटिश शासन काल में राष्ट्रवादी लेखन के प्रमुख प्रतिनिधि के रूप में हम लाला लाजपत राय, ए.सी. मजुमदार, वी.डी. सावरकर, अरविन्द घोष, ताराचन्द, बी. आर. नंदा, सी.एफ एण्ड्रयूज आदि विद्वानों को ले सकते है। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने प्राचीन भारत के संदर्भ में एक प्रकार के स्वर्णयुग की अवधारणा विकसित की जिसमें भारत विश्व का गुरू था। भारतीय विज्ञान, कला और साहित्य की उपलब्धियाँ अप्रतिम थी। प्राच्य निरंकुशवाद का खंडन करते हुए, उन्होंने प्राचीन भारत में स्वशासन की संस्थाओं के अस्तित्व को स्वीकार किया। उन्होंने वेदों को समस्त ज्ञान और उपलब्धियों का स्रोत माना। भारतीय सभ्यता को यूरोपीय सभ्यता से श्रेष्ठ मानते हुए उन्होंने श्वेत उत्तरदायित्व के सिद्धांत का खंडन कर दिया। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन को उन्होंने भारत की महान सभ्यता की विरासत माना। काशीप्रसाद जायसवाल ने अपनी पुस्तक ''हिन्दू पॉलिटी'' के माध्यम से बताया कि प्राचीन भारत में गणराज्य थे एवं एक तरह की संवैधानिक राजतंत्रात्मक प्रणाली का भी अस्तित्व था, साथ ही वे बताते हैं कि प्राचीन भारत में ऐसी संस्थाएं भी विधमान थी जिन्हें हम आधुनिक संसद का प्रतिरूप मान सकते हैं। उन्होंने प्रतिपादित किया कि हिन्दू राजव्यवस्था का स्वर्णयुग उनके अतीत में ही नहीं बल्कि उसके भविष्य में भी निहित है।[15]

राष्ट्रवादी दृष्टिकोण के इतिहासकार भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के शोषणमूलक चरित्र पर बल देते है। उपनिवेशवादी शासन का प्रमुख उद्देश्य भारत की अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश अर्थव्यवस्था की जरूरत के अनुसार ढालना था ताकि भारत ब्रिटेन के विकास के लिए एक सीढ़ी का कार्य कर सके। इसी परिप्रेक्ष्य में भारतीय अर्थव्यवस्था को उन्होंने ब्रिटेन के लिए कच्चे माल के आपूर्तिकर्ता और तैयार माल के बाजार के रूप में विकसित किया। भारत का पिछड़ापन इसी का देन था। सामाजिक क्षेत्र में भी उन्होंने भारतीयों को हीन माना। भारतीय और ब्रिटिश हितों का यह अंतर्विरोध ही औपनिवेशिक शासन का प्राथमिक अंतर्विरोध था और इसी की प्रतिक्रियास्वरूप राष्ट्रवाद का उदय हुआ जिसने कालान्तर में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को जन्म दिया। इनके अनुसार भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन किसी वर्ग विशेष का आंदोलन नहीं था बल्कि यह औपनिवेशिक शोषण के

विरूद्ध एकताबद्ध होते एक उदीयमान राष्ट्र की आकांक्षा की देन था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने भारतीय राष्ट्रीय अस्मिता पर ब्रिटिश इतिहासकारों द्वारा किये गये प्रत्येक प्रहार का हरसम्भव प्रतिकार करने की कोशिश की। इनके अनुसार राष्ट्रवादी चेतना उपनिवेशी शासन के सबसे सधे विरोध पर, देशभक्ति की भावना पर और भारत की प्राचीन परम्पराओं में गर्व की भावना पर आधारित विचारधारा पर आधारित थी।

इस दृष्टिकोण की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी कि इसने भारतीय समाज के अन्दरूनी टकरावों को अनदेखा किया जिन्होंने अन्य बातों के अलावा दो राष्ट्र–राज्यों में उसके विभाजन को जन्म दिया तथा वह राष्ट्र के अस्तित्व को साझे हितों वाली एक समरस इकाई मानकर चलता था। उग्र राष्ट्रवादियों द्वारा हिंदू स्वर्णयुग की अवधारणा के प्रतिपादन से कालांतर में संप्रदायिकता के विकास के लिए आधार तैयार हुआ।

उपाश्रयी दृष्टिकोण

20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इतिहास लेखन का एक नवीन सम्प्रदाय उभरकर सामने आया जिसे उपाश्रयवादी उपागम कहा जाता है। इतिहास की व्याख्या का उनका तरीका "History from Below'' के नाम से जाना जाता है। इसे जनता का इतिहास लेखन भी कहा जाता है। उपाश्रयी शब्द इटली के प्रसिद्ध मार्क्सवादी विचारक अंटोनियो ग्राम्शी की रचनाओं से लिया गया है। भारतीय संदर्भ में रंजीत गुहा उपाश्रयी अध्ययन के जनक माने जाते हैं। उन्होंने उपाश्रयी अध्ययन के पहले छह खंडों का संपादन किया। रणजीत गुहा द्वारा संपादित सबआल्टर्न स्टडीज के पहले खंड का प्रारंभिक वक्तव्य उत्तेजक था – "भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास लेखन पर लंबे समय से कुलीनवाद का वर्चस्व रहा है।" गुहा ने आगे कहा कि "आँखें पर पट्टी बांधकर किया गया इतिहास लेखन "भारतीय राष्ट्रवाद की व्याख्या नहीं कर सकता क्योंकि यह इस राष्ट्रवाद के निर्माण और विकास में जनता द्वारा अपने बल पर अर्थात् कुलीनों से स्वतंत्र रूप से किए गए नए योगदान की उपेक्षा करता है।[16]

यह दृष्टिकोण अपने पूर्व के उपागमों जैसे साम्राज्यवादी उपागम और राष्ट्रवादी उपागम को मूलतः ''अभिजातवर्गीय इतिहास लेखन'' कहकर खारिज कर देता है। इन इतिहासकारों के लिए उपनिवेशवाद काल में भारतीय समाज में मुख्य अंतर्विरोध अभिजात वर्ग (भारतीय तथा ब्रिटिश दोनों) और निचले स्तर की जनता के मध्य था, उपनिवेशवाद और भारतीय जनता के बीच नहीं था। उनका मानना है कि साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष को लेकर भारतीय जनता में कभी एकता कायम नहीं हुई और यह भी कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन जैसी चीज का कभी कोई वजूद नहीं था। वे इस बात पर जोर देते हैं कि आंदोलन में दो स्पष्ट धाराएं थी–निम्न तबके की जनता का साम्राज्यवादी विरोधी वास्तविक संग्राम तथा अभिजन वर्ग का नकली राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन। इनके अनुसार भारत में देशी अभिजात वर्ग और उपनिवेशवाद के हित समान थे। अतः देशी अभिजातवर्ग ने उपनिवेशवादी शासकों से समझौता कर लिया। इस प्रकार से विभिन्न उपाश्रित वर्गों को दो स्तरों पर लडाई लड़नी पड़ी– एक, उपनिवेशवाद के विरूद्ध और दूसरा, देशी अभिजात वर्ग के विरूद्ध। आम जनता के ब्रिटिशराज केवल एक विदेशी शासन मात्र नहीं बल्कि ''सरकार, साहूकार और जमींदार'' की त्रिमूर्ति था।[17] वस्तुतः उपाश्रयी अध्ययन गुट के विद्वानों ने अभिजन वर्ग एवं मातहत वर्ग को पृथक कर मातहतों की स्वायत्तता पर बल दिया। उपाश्रयी अध्ययन ने जो पृथ्ककरण किया वह मार्क्स की पद्धति से हटकर था। मार्क्स के पृथक्करण का मुख्य आधार आर्थिक था, जबकि सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्तर पर भी दोनों वर्गों में विभिन्नता थी। अतः उपाश्रयी प्रवृत्ति के कार्यवाही, जागृति और संस्कृति के लोकप्रिय अथवा मातहतों की स्वायत्तता के उपेक्षित आयाम को खोजने का प्रयास किया।

उपाश्रयी अध्ययन द्वारा किया गया राष्ट्रीय आंदोलन का चित्रण साम्राज्यवादी तथा नव–साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत किए गए राष्ट्रीय आंदोलन के चित्रण से साम्यता रखता है। इन दोनों में केवल एक फर्क है। जहाँ पर नव–साम्राज्यवादी इतिहास दर्शन इस आंदोलन को दो हिस्सों में नही बांटता, बल्कि सारे आंदोलन को उसी रूप में चित्रित करता है, उपाश्रयी इतिहास दर्शन पहले इस आंदोलन को दो भागों में बांटता है तथा नव–साम्राज्यवादियों द्वारा प्रस्तुत किए गए चित्र का आंदोलन की अभिजन धारा के साथ चस्पा कर देता है।

इस दृष्टिकोण की विशेषता यह है कि यह अनैतिहासिक है और हर तरह की लोकप्रिय दुस्साहसिकता और हर तरह की चेतना को महिमामण्डित करता है और प्रबुद्ध वर्ग, संगठित दलीय नेतृत्व और दूसरे अभिजन समूहों की हर पहल और हर गतिविधि के प्रति इसमें एक अनौतिहासिक तिरस्कार भाव मौजूद है। इसके परिणामस्वरूप यह दृष्टिकोण भी भारतीय जनता के उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के औचित्य को नकारता है।

उपाश्रितवर्गवादी दृष्टिकोण की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि यह अध्ययन सामग्री के रूप में अधिकारिक स्रोतों के साथ–साथ स्थानीय, गैर सरकारी और व्यक्तिगत स्रौतों को भी स्थान देता है। यह मौखिक परम्परा को भी स्रोत के रूप में भी स्वीकार करता है। संक्षेप में कहे तो उपाश्रयी इतिहासकारों का सबसे बड़ा योगदान यह है कि वे उन अनगिनत लिपिबद्ध विवरणों को अंधेरे और सीलन भरे कमरों में रखी धूल भरी आलमारियों से बाहर निकालकर दुनिया के सामने ला रहा है, जो आस्था और संघर्ष की अनेक कथाओं के साक्षी रहे हैं। इसने अभिजातवर्गीय ऐतिहासिक बोध कार्य के लिए अब तक अत्यंत निम्न–निकृष्ट मनुष्यों एवं समूहों को पुर्नस्थापित किया है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद का अध्ययन अनेक उपागमों के द्वारा किया जाता है और प्रत्येक दृष्टिकोण का अपना महत्व है। परन्तु प्रत्येक दृष्टिकोण किसी एक दृष्टिकोण से प्रभावित रहा है जिसका प्रभाव उसके अध्ययन पर नजर आता है। इसके

परिणामस्वरूप एक सीमा तक उनका विश्लेषण सही होने के बावजूद वे आंशिक उपागम ही बने रहे। उदाहरण के तौर पर साम्राज्यवादी दृष्टिकोण, राष्ट्रवादी नेतृत्व के योगदान की पूर्ण अवहेलना कर देता है वहीं दूसरी ओर राष्ट्रवादी दृष्टिकोण नेतृत्व की भूमिका का महिमामंडन करने के क्रम में भारतीय समाज में व्याप्त अंतर्विरोधों की उपेक्षा कर देता है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण वर्ग–संघर्ष की धारणा को भारत के राष्ट्रीय आंदोलन की व्याख्या करने में लागू करने के क्रम में अतिवादिता के स्तर पर पहुंच जाता है जिसके कारण यह राष्ट्रीय आंदोलन की प्रेरक शक्ति को पूर्णतः नजरअंदाज करते हुए उसे बुर्जआ–मजदूर संघर्ष के स्तर तक सीमित कर देता है। उपाश्रित वर्गवादी आंदोलन भी नेतृत्व की भूमिका की उपेक्षा करता है और एक सामान्य राष्ट्रीय संघर्ष के स्थान पर स्थानीय संघर्षों के महत्व पर अधिक बल देता है। परन्तु फिर भी सभी दृष्टिकोणों का अपना महत्व है। अतः भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद को सही रूप में समझने और विश्लेषण के लिए प्रत्येक दृष्टिकोण की अपनी सार्थकता और महत्व है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *उपनिवेशवाद के स्वरूप के बारे में ये विचार प्रो. बिपिन चन्द्र के एक व्याख्यान "भारत में उपनिवेशवाद" पर आधारित है। यह व्याख्यान उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालयों के तत्वावधान में आयोजित एक संगोष्ठी में दिया था।*
2. *राय, हिमांशु (संपा.), भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद एक अध्ययन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2013, पृ. 2–3*
3. *एम.के. गांधी, इंडिया ऑफ माई ड्रीम्स, आर.के. प्रभु द्वारा संकलित, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1947, पृ. 6*
4. *मार्क्स और एंजेल्स, ऑन कॉलनिज्म, पृ. 191*
5. *देसाई, ए.आर., सोशियल बैक ग्राउण्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म, पॉपुलर प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 83*
6. *मार्क्स और एंजेल्स, पूर्वोक्त, पृ. 81*
7. *मूरे, बेरिंगटन, सोशियल ओरिजिन ऑफ डिक्टेटरशिप एण्ड डेमोक्रेसी, पेंगुइन, 1966, पृ. 347*
8. *देसाई, ए.आर., सोशियल बैकग्राउण्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म, पॉपुलर प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 34–35*
9. *सील, अनिल, द इमरजेंस ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटीज प्रेस, 1968, पृ. 351*
10. *शुक्ल, आर.एल., आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2001, पृ. 281*
11. *गोपाल, एस., द इंडियन इकोनोमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू, वोल्यूम ग्प्ट, 1977, पृ. 405*
12. *मुखर्जी, एस.एन., जॉन्स, सर विलियम्स, ए स्टडी इन एट्टीन्थ सैंचुरी ब्रिटिश एट्टीट्यूड टू इण्डिया, 1996, पृ. 104–19*
13. *देसाई, ए.आर., सोशल बैकग्राउण्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म, पॉपुलर प्रकाशन, 1975, आमुख*
14. *सरकार, सुमित, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 11*
15. *जायसवाल, के.पी., हिन्दू पॉलिटी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2016, पृ. 366*
16. *गुहा, रामचन्द्र, सबआल्टर्न स्टडीज, वोल्यू ए ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 1982, पृ. 1–3*
17. *राय, हिमांशु (संपा.), भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद एक अध्ययन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2013, पृ. 11*